RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंधा अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

प्रमुख स्मृतियाँ एवं अर्थशास्त्र : भारतीय ज्ञान परम्परा के संदर्भ में

पिंकी साँखला

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति में धर्म को समाज, व्यक्ति और समग्र विश्व-व्यवस्था का मूल आधार स्वीकार किया गया है। यह केवल किसी एक आस्था, संप्रदाय अथवा कर्मकाण्ड तक सीमित न होकर जीवन के समस्त पक्षों—नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक—को समन्वित रूप से संचालित करने वाला तत्त्व है। प्रत्येक युग में परिस्थितियों, आवश्यकताओं और सामाजिक संरचनाओं के अनुरूप धर्म के स्वरूप में परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा, किंतु उसका मूल उद्देश्य सदैव लोक-कल्याण, सामाजिक संतुलन और आत्मोन्नति ही रहा है। इसी कारण धर्म भारतीय सभ्यता की निरंतरता और गौरवशाली अतीत की संरचना का प्रमुख आधार बना।

महानारायणोपनिषद् में धर्म की सार्वभौमिक महत्ता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादित किया गया है। वहाँ कहा गया है कि धर्म ही समस्त जगत की प्रतिष्ठा है और उसी पर संपूर्ण संसार आश्रित है। धर्म के द्वारा ही समाज में पाप का नाश होता है और धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित रहता है। यह कथन स्पष्ट करता है कि धर्म केवल व्यक्ति-विशेष के आचरण का नियामक नहीं, बल्कि समग्र सामाजिक व्यवस्था की स्थिरता और नैतिकता का आधार है। प्राचीन काल से भारतीय जीवन धर्म से संश्लेषित और अनुप्राणित रहा है; व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कार, कर्तव्य और व्यवहार धर्म की परिधि में ही परिभाषित किए गए।

पाश्चात्य विद्वान मैक्स वेबर ने भी भारतीय समाज में धर्म की केंद्रीय भूमिका को स्वीकार करते हुए कहा है कि भारतीय व्यक्ति के समस्त कर्तव्य और कर्म धर्म से ही प्रेरित होकर गतिमान होते थे। धर्म ही उसके पारिवारिक जीवन, सामाजिक संबंधों और सामूहिक संरचना को दिशा प्रदान करता था। इस दृष्टि से धर्म को भारतीय समाज का नैतिक इंजन कहा जा सकता है, जिसने न केवल व्यक्तिगत आचरण को नियंत्रित किया, बल्कि सामाजिक संस्थाओं के निर्माण और संरक्षण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'धृञ्' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है—धारण करना, संभालना, स्थिर रखना या आश्रय देना। 'मन' प्रत्यय के योग से निष्पन्न यह शब्द अपने आप में गहन दार्शनिक अर्थ समेटे हुए है। अमरकोष में धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि जो लोकों को धारण करता है, जिससे लोक धारण किए जाते हैं और जिसे जन सामान्य धारण करता है, वही धर्म है। इस शाब्दिक

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

व्युत्पत्ति के अनुसार धर्म वह शक्ति है जो समाज और विश्व को विघटन से बचाकर एक सुव्यवस्थित स्वरूप में बनाए रखती है।

धर्म की इस अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो पुण्यात्माओं द्वारा धारण किया जाता है अथवा जो समस्त लोकों को धारण करता है, वही धर्म है। यहाँ 'धारण शक्ति' से तात्पर्य उस अंतर्निहित गुण से है, जो किसी वस्तु या व्यवस्था को उसके मूल स्वरूप में स्थिर रखता है। यदि यह शक्ति न हो, तो वह वस्तु अपने स्वभाव से विचलित होकर नष्ट हो सकती है। इसी भाव को महाभारत के कर्णपर्व में अत्यंत सारगर्भित रूप में व्यक्त किया गया है, जहाँ कहा गया है कि धारण करने के कारण ही धर्म धर्म कहलाता है; धर्म प्रजा को धारण करता है और जो धारण-शक्ति से युक्त है, वही धर्म है—यह निश्चित सत्य है।

धर्म की एक और महत्वपूर्ण व्याख्या यह है कि जो धारण किए हुए तत्त्व को नष्ट होने से बचाता है, वही धर्म है। इस अर्थ में धर्म केवल नियमों का संकलन नहीं, बल्कि संरक्षण और संतुलन की वह शक्ति है, जो व्यक्ति, समाज और राज्य को पतन से बचाती है। यही कारण है कि भारतीय परंपरा में धर्म को दण्ड, नीति और शासन से भी ऊपर स्थान दिया गया है।

दर्शनशास्त्र में भी धर्म की अवधारणा को गहराई से विश्लेषित किया गया है। महर्षि कणाद प्रणीत वैशेषिक दर्शन में धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि जिससे अभ्युदय (भौतिक उन्नति) और नि:श्रेयस (आत्मिक कल्याण या मोक्ष) की सिद्धि हो, वही धर्म है। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि धर्म केवल परलोक-साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि वह लौकिक और पारलौकिक—दोनों प्रकार के कल्याण का साधन है। यह जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं और आध्यात्मिक लक्ष्यों के बीच सेतु का कार्य करता है।

मीमांसा और धर्मशास्त्रीय परंपरा में धर्म को वेद-विहित कर्तव्यों से जोड़ा गया है। 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म:' के अनुसार, वेद द्वारा प्रतिपादित कर्म ही धर्म कहलाते हैं, जबकि 'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्यय:' यह स्पष्ट करता है कि वेदसम्मत आचरण धर्म है और उसके विपरीत आचरण अधर्म। इन परिभाषाओं से यह सिद्ध होता है कि धर्म की प्रमाणिकता का मूल स्रोत वेद माने गए हैं, और स्मृतियाँ तथा अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथ इन्हीं वैदिक सिद्धांतों को व्यवहारिक जीवन में लागू करने का कार्य करते हैं।

धर्मदीपिका में विद्वानों ने यह स्पष्ट किया है कि वेद-विहित क्रिया, जिसका उद्देश्य लोककल्याण हो, वही धर्म है, जबकि निषिद्ध क्रिया परिणाम में गुणकारी प्रतीत होने पर भी अधर्म ही मानी जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वस्थ विचार, जनहितकारी कर्म और नैतिक आचरण धर्म की परिधि में आते हैं। धर्म रूपी सत्ता के मूल प्रतिपादक वैदिक वाङ्मय हैं और श्रुति तथा स्मृति द्वारा निर्दिष्ट आचार को ही धर्म कहा गया है। देवीभागवत के अनुसार भी वेद और स्मृति से निर्धारित कर्मों का पालन करना ही धर्म है।

श्रुति और स्मृति साहित्य को धर्म का प्रमुख आधार माना गया है। गौतम धर्मसूत्र धर्म के तीन मूलाधार—वेद, वेदवेत्ताओं की स्मृति तथा उनका शील—स्वीकार करता है। इसी प्रकार मनुस्मृति में धर्म के पाँच आधार बताए गए हैं—वेद, स्मृति, शील, सज्जन पुरुषों का आचार और आत्मतुष्टि। अत: स्मृतियों में

धर्म के विविध नैतिक, सामाजिक और व्यवहारिक पक्षों का विवेचन मिलता है, जिससे उनका अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

स्मृति एवं उनकी संख्या :

'स्मयर्त इति स्मृति:'—इस यौगिक अर्थ के अनुसार स्मृति वह है, जो पूर्व में स्मरण किए गए ज्ञान पर आधारित हो। ब्रह्मा आदि महर्षियों द्वारा श्रुतियों से प्राप्त तथा स्मरण-पटल पर स्थित ज्ञान को जब लोककल्याण की दृष्टि से लिपिबद्ध किया गया, वही स्मृति कहलाया। दूसरे शब्दों में, परंपरा से प्राप्त सामाजिक विधि-विधान और आचार-व्यवहार का संहिताबद्ध रूप ही स्मृति है।

श्रुति अर्थात् वेद जहाँ धर्म और नैतिक शिक्षा का मूल स्रोत हैं, वहीं स्मृतियाँ उनके व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट करने वाले ग्रंथ हैं; इसी कारण इन्हें 'धर्मशास्त्र' भी कहा गया है। श्रुति और स्मृति में मूलभूत अंतर है। श्रुति 'श्रू' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—श्रवण; यह ईश्वरप्रदत्त ज्ञान है, जिसे महर्षियों ने सुनकर ग्रहण किया और शिष्य-परंपरा से सुरक्षित रखा। कालांतर में केवल श्रवण के माध्यम से इस ज्ञान की रक्षा कठिन हो गई, तब स्मृति साहित्य का विकास हुआ।

स्मृतियाँ श्रुत्येतर होते हुए भी वेदानुकूल हैं। इनके अर्थ वेदप्रणीत माने जाते हैं, जबकि शब्द ऋषियों द्वारा रचित होते हैं। इसी आधार पर श्रुति और स्मृति में भेद किया जाता है—श्रुति में शब्द, अर्थ और उच्चारण तीनों नित्य माने गए हैं, जबकि स्मृतियों में नित्यत्व केवल अर्थ का होता है; शब्द विभिन्न स्मृतिकारों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में व्यक्त किए गए हैं।

अपौरुषेय वेद भारतीय धर्मपरंपरा के सर्वप्राचीन मूल ग्रंथ हैं। इनके पश्चात् धर्म के व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट करने वाले धर्मसूत्रों और स्मृतियों का विकास हुआ। प्रारम्भिक काल में स्मृतियाँ अल्प संख्या में थीं, किंतु कालांतर में सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि होती गई। विभिन्न आचार्यों और ग्रंथों में स्मृतिकारों की संख्या को लेकर भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं।

गौतम ने केवल मनु का उल्लेख किया है, जबकि बौधायन ने सात और वसिष्ठ ने पाँच स्मृतिकारों को स्वीकार किया। आपस्तम्ब ने दस नाम गिनाए हैं और मनु ने स्वयं को छोड़कर छह स्मृतिकारों का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य ने स्मृतियों की संख्या बीस मानी है। पराशर ने भी लगभग बीस स्मृतिकारों का परिगणन किया है, यद्यपि नामों में कुछ भिन्नता है। कुमारिल के तन्त्रवार्तिक में अट्ठारह धर्मसंहिताओं का उल्लेख मिलता है, जबकि कुछ ग्रंथों में चौबीस, छत्तीस तथा उससे अधिक स्मृतियों की चर्चा की गई है।

वृद्धगौतम स्मृति में 57 धर्मशास्त्रकारों के नाम प्राप्त होते हैं। गरुड़पुराण में 18 तथा अग्निपुराण में 20 स्मृतियों का उल्लेख मिलता है। निबंधग्रंथों जैसे वीरमित्रोदय, निर्णयसिन्धु और मयूख आदि में स्मृतियों की संख्या और भी अधिक बताई गई है, जिससे कुल संख्या लगभग सौ या उससे अधिक मानी जाती है।

यद्यपि स्मृतियों की कुल संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद बना हुआ है, फिर भी मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, नारदस्मृति, पराशरस्मृति और बृहस्पति स्मृति जैसी प्रमुख स्मृतियों की प्रामाणिकता पर सामान्यत: सभी विद्वान एकमत हैं। प्रस्तुत विवेचन में इन्हीं प्रमुख स्मृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

स्मृतियों का परिचय :

भारतीय स्मृति-साहित्य में मनुस्मृति को सर्वाधिक प्राचीन, प्रतिष्ठित और आधारभूत स्मृति का स्थान प्राप्त है। मनु को संहिता साहित्य में मानवजाति का आदि पुरुष माना गया है और यह स्वीकार किया जाता है कि अधिकांश परवर्ती स्मृतियाँ मनुस्मृति से ही प्रेरित होकर विकसित हुई हैं। मनुस्मृति एक समग्र धर्मशास्त्र है, जिसमें ऐहिक और पारलौकिक—दोनों प्रकार के जीवन से संबंधित उपदेशों का संतुलित समन्वय मिलता है। इसमें सृष्टि-उत्पत्ति से आरंभ कर धर्मतत्त्व, ब्रह्मचर्य, विवाह, गृहस्थाश्रम, पञ्चमहायज्ञ, स्त्रीधर्म, राजधर्म, वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, दण्ड-विधान, प्रायश्चित्त तथा कर्मफल जैसे विषयों का बारह अध्यायों में व्यापक विवेचन प्राप्त होता है। इसकी वेदमूलकता के कारण इसे सार्वभौमिक और सार्वकालिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

मनुस्मृति के पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जहाँ मनुस्मृति में विषय-वस्तु का कहीं-कहीं बिखराव दिखाई देता है, वहीं याज्ञवल्क्यस्मृति में क्रमबद्धता, स्पष्टता और व्यावहारिक दृष्टिकोण दिखाई देता है। यह स्मृति तीन अध्यायों—आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त—में विभक्त है। इसमें धर्म, संस्कार, विवाह, राजधर्म, दान, न्याय-व्यवस्था, ऋण, दण्ड तथा प्रायश्चित्त का सुगठित विवेचन मिलता है। स्त्रियों और शूद्रों के प्रति याज्ञवल्क्यस्मृति में मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया है, जो इसकी प्रमुख विशेषता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति के पश्चात् नारदस्मृति का स्थान आता है, जो मुख्यत: व्यवहार अथवा न्याय-विधान से संबंधित है। इसमें सभा, साक्ष्य, ऋण, दास्य, स्त्रीधन और दण्ड आदि विषयों का विस्तार से विवेचन किया गया है। पराशरस्मृति में विशेष रूप से आचार और प्रायश्चित्त पर बल दिया गया है तथा कलियुग में इसकी विशेष मान्यता स्वीकार की गई है। बृहस्पतिस्मृति व्यवहार-विधि के क्षेत्र में विशिष्ट मानी जाती है, जिसमें शास्त्र के साथ-साथ युक्ति और तर्क के आधार पर निर्णय को महत्त्व दिया गया है।

कात्यायनस्मृति व्यवहार और स्त्रीधन के विवेचन के लिए प्रसिद्ध है, जबकि व्यास, दक्ष, यम, हारीत, विष्णु, अत्रि, अंगिरा आदि की स्मृतियाँ भी धर्म के विविध सामाजिक, नैतिक और धार्मिक पक्षों का प्रतिपादन करती हैं। इन स्मृतियों के आशय को स्पष्ट करने में मेधातिथि, कुल्लूक, विज्ञानेश्वर, विश्वरूप और असहाय जैसे टीकाकारों की टीकाएँ अत्यंत सहायक सिद्ध होती हैं।

इस प्रकार स्मृति-साहित्य भारतीय धर्म, समाज और संस्कृति का व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करता है। ये स्मृतियाँ मानव को सदाचार, सामाजिक संतुलन और लोककल्याण की दिशा में प्रेरित करती हुई भारतीय जीवन-दृष्टि को सुदृढ़ रूप प्रदान करती हैं।

स्मृतियों के विषय :

धर्म एवं आचार के मीमांसक शास्त्र के रूप में श्रुतियों के पश्चात् स्मृतियों को ही सर्वाधिक प्रामाणिक स्थान प्राप्त है। वेदसम्मत आचरण और व्यवहार के जिन नियमों के माध्यम से प्राचीन मानव का जीवन शान्त, मर्यादित एवं उन्नत होता था, उनका क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित संकलन स्मृति-साहित्य में मिलता है। समाज की सुव्यवस्था, एकरसता तथा दोष-निवारण के लिए जिन विधि-विधानों और आचार

प्रणालियों की आवश्यकता थी, उनकी रूपरेखा निर्मित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य स्मृतियों ने किया। संकीर्ण अर्थ में धर्मशास्त्र और स्मृति को समानार्थक माना गया है; स्वयं मनु ने वेद को 'श्रुति' और धर्मशास्त्र को 'स्मृति' कहा है।

प्रारम्भिक काल में मानव जीवन परम्परागत रीति-रिवाजों, आत्मसंयम और अग्रजों के आदर्श आचरण द्वारा नियंत्रित था, किंतु कालान्तर में जब समाज का विस्तार हुआ, स्थायी निवास, सम्पत्ति-संग्रह और सामाजिक जटिलताएँ बढ़ीं, तब विधि-विधानों की अनिवार्यता अनुभव की गई। वैदिक ऋषियों द्वारा दिए गए लोककल्याणकारी निर्देशों को परवर्ती आचार्यों ने संहिताबद्ध किया, जिससे वे विधि का रूप ग्रहण कर सके। इस प्रकार स्मृतियाँ अस्तित्व में आईं और उनके साथ भारतीय विधि के सुव्यवस्थित विकास का युग आरम्भ हुआ। इसी कारण स्मृतियुग को भारतीय विधि का स्वर्णयुग कहा गया है। वेदार्थ के अनुरूप रचित होने के कारण मनुस्मृति स्मृतियों में प्रधान मानी गई है।

मनुस्मृति को मानव समाज का प्रथम विधिग्रन्थ कहा जा सकता है, जिसमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शासनिक और न्यायिक व्यवस्था के साथ-साथ अपराध और दण्ड-विधान का सम्यक् विवेचन हुआ है। इस दृष्टि से यह मानवमात्र का धर्मशास्त्र प्रतीत होती है।

सामान्यतः स्मृतियों के विषय तीन प्रमुख खण्डों में विभक्त किए जाते हैं—आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त।

आचार खण्ड में चारों वर्णों और चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों का विधान मिलता है। इसमें ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के जीवन, आचरण, दिनचर्या, दान, श्राद्ध, पञ्चमहायज्ञ तथा सामाजिक व्यवहार का विवरण है।

व्यवहार खण्ड में न्याय-प्रक्रिया, साक्ष्य, शपथ, दण्ड, अपराध, न्यायाधीश के गुण, निर्णय-पद्धति, दाय-विभाजन, स्त्रीधन, ऋण, बन्धक और कर-व्यवस्था आदि विषयों का विवेचन किया गया है। न्याय और दण्डनीति को धर्मशास्त्र का अनिवार्य अंग माना गया है, क्योंकि अधर्म की स्थिति में दण्ड ही समाज को मर्यादा में लाने का साधन है।

प्रायश्चित्त खण्ड में धर्म-उल्लंघन से उत्पन्न पापों के निवारण हेतु व्रत, दान, जप-तप, तीर्थाटन और विविध प्रायश्चित्त विधियों का विधान किया गया है। कर्मविपाक का सिद्धान्त भी स्मृतियों का महत्त्वपूर्ण विषय है, जिसके अनुसार शुभ-अशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त संस्कार-विधान, विवाह और उसके प्रकार, स्त्री-पुरुष के अधिकार एवं कर्त्तव्य, धर्मज्ञान और अध्यात्मज्ञान का भी स्मृतियों में विस्तृत विवेचन मिलता है। इस प्रकार स्मृतिग्रन्थ अपने युग के विधिग्रन्थ थे और आज भी विधि-विधानात्मक शास्त्र के रूप में मान्य हैं। आधुनिक हिन्दू विधि का विकास भी मुख्यतः श्रुति, स्मृति, टीकाओं और निबन्धों पर आधारित है तथा न्यायालयों में वाद-विवाद के निस्तारण में स्मृतियों का संदर्भ आज भी सहायक सिद्ध होता है।

स्मृतियों का रचनाकाल :

स्मृतिकालीन सामाजिक, धार्मिक और विधिक व्यवस्था को समझने के लिए स्मृतियों के रचनाकाल

का अध्ययन आवश्यक है। स्मृतियाँ किसी एक निश्चित काल की रचना नहीं हैं, बल्कि इनका विकास एक दीर्घ और विस्तृत कालक्रम में हुआ है। आदि स्मृति मनुस्मृति से लेकर परवर्ती स्मृतियों तक का कालक्रम अत्यंत व्यापक है, जिस पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद भी पाए जाते हैं।

स्मृतियों के मूल आधार के रूप में वेद स्वीकार किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त वेदोत्तर साहित्य—सूत्रग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराण तथा नीति और आचार सम्बन्धी ग्रन्थ—भी स्मृतियों की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करते हैं। स्मृतियों के काल-निर्धारण में दो प्रमुख दृष्टिकोण मिलते हैं—पारम्परिक और ऐतिहासिक। पारम्परिक दृष्टिकोण में स्मृतिकारों को अत्यन्त प्राचीन काल से जोड़ा गया है, किंतु इसके ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरणत: स्वायंभुव मनु के काल को विभिन्न विद्वानों ने 3100 ई.पू. या उससे भी पूर्व माना है, परंतु इन तिथियों की ऐतिहासिक पुष्टि कठिन है।

दूसरा और अधिक स्वीकार्य दृष्टिकोण ऐतिहासिक है, जिसे प्रबल प्रमाणों का समर्थन प्राप्त है। इसके अनुसार वेदोत्तर साहित्य, विशेषत: सूत्रग्रन्थों और धर्मशास्त्रों की रचना लगभग 800 ई.पू. के आसपास प्रारम्भ होती है। धर्मसूत्रों की संक्षिप्त और संकेतात्मक प्रकृति के कारण उनके आधार पर विस्तृत, श्लोकबद्ध और व्यावहारिक धर्मशास्त्रों अर्थात् स्मृतियों की रचना हुई। इस प्रकार धर्मसूत्र और स्मृतियाँ कुछ सीमा तक समकालीन तथा कुछ परवर्ती रचनाएँ मानी जाती हैं।

अनेक विद्वानों के अनुसार मनुस्मृति का वर्तमान स्वरूप किसी प्राचीन मानवधर्मसूत्र का संशोधित, पद्यात्मक रूप है। मैक्समूलर, वेबर, बुहलर तथा डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी जैसे विद्वानों ने मनु और उनकी कृति को अत्यन्त प्राचीन सिद्ध किया है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और धर्मसूत्रों में मनु के उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि मनुस्मृति का आधार अत्यन्त प्राचीन है।

आधुनिक विद्वानों के अनुसार मनुस्मृति का निर्माण और विकास लगभग 600 ई.पू. से द्वितीय शताब्दी ई. तक के कालखंड में हुआ। इसके पश्चात् महत्त्व की दृष्टि से याज्ञवल्क्यस्मृति का स्थान आता है, जिसका रचनाकाल डॉ. पी. वी. काणे के अनुसार ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी से ईसा के पश्चात् तृतीय शताब्दी के बीच माना जाता है। इस मत को प्राय: सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है।

याज्ञवल्क्यस्मृति के बाद नारदस्मृति का प्रणयन हुआ, जिसका काल प्रथम से तृतीय शताब्दी ई. के मध्य माना जाता है। पराशरस्मृति का रचनाकाल प्रथम से पाँचवीं शताब्दी ई० तथा बृहस्पतिस्मृति का काल लगभग 200 से 400 ई. के बीच स्वीकार किया गया है। इसके बाद कात्यायन, शंख आदि स्मृतियाँ परवर्ती काल में अस्तित्व में आईं।

स्मृतियों का महत्त्व :

स्मृतियाँ मानव के सर्वांगीण कल्याण और चहुँमुखी विकास के उद्देश्य से निर्मित ऐसी अमूल्य धरोहर हैं, जिनमें वैज्ञानिक, नैतिक और व्यावहारिक नियमों का समन्वित रूप से समावेश हुआ है। ये केवल धार्मिक ग्रंथ न होकर भारतीय संस्कृति और संस्कृत वाङ्मय की आधारशिला हैं। स्मृतियों की उपयोगिता सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक, आर्थिक तथा विधिक—सभी दृष्टियों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वेदों में निहित तत्त्वों का विस्तृत, व्यावहारिक और जीवनोपयोगी विवेचन स्मृतियों के माध्यम

से ही संभव हुआ है।

धर्मशास्त्रों अथवा स्मृतियों में मानव जीवन के इहलौकिक और पारलौकिक दोनों पक्षों का समग्र विश्लेषण मिलता है। ये ग्रंथ भारतीय समाज की आचार-संहिता के रूप में कार्य करते हैं, जिनसे मनुष्य को अपने कर्तव्यों का बोध होता है और सदाचार की प्रेरणा प्राप्त होती है। स्मृतियाँ व्यक्ति को नैतिक, संयमित और कर्तव्यनिष्ठ जीवन जीने की शिक्षा देती हैं। धर्म के शाश्वत और सनातन नियमों का संकलन होने के कारण इनका आध्यात्मिक महत्त्व भी अत्यंत उच्च है; इनके पालन से मनुष्य अभ्युदय और आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

स्मृतियों के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति, सामाजिक संरचना और जीवन-दृष्टि का गहन ज्ञान प्राप्त होता है। ये आर्यावर्त के गौरवमयी अतीत को उद्घाटित करती हैं तथा भारतीय सांस्कृतिक विकास की आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित हैं। समाज के नैतिक मूल्यों, पारिवारिक आदर्शों और सामाजिक मर्यादाओं का संरक्षण इन्हीं ग्रंथों द्वारा हुआ है।

विधिक दृष्टि से स्मृतियों का महत्त्व सर्वाधिक है। इन्हें भारतीय हिन्दू विधि का मूल आधार माना जाता है। स्मृतिकाल को हिन्दू विधि का स्वर्णयुग कहा गया है, क्योंकि इसी काल में विधि के सिद्धांतों का क्रमबद्ध, तर्कसंगत और सुव्यवस्थित विकास हुआ। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और नारदस्मृति विधिक क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मनुस्मृति को सर्वश्रेष्ठ स्मृति इसलिए माना जाता है क्योंकि इसमें मानव जीवन के लगभग सभी पक्षों—आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त—से संबंधित विधिक एवं नैतिक नियमों का समग्र संकलन मिलता है। विवाह, भरण-पोषण, उत्तराधिकार, स्त्रीधन आदि विषयों पर इसमें पर्याप्त और सुविचारित विधान उपलब्ध हैं।

यद्यपि मनुस्मृति में कुछ स्थलों पर विरोधाभास प्रतीत होता है, विशेषत: नारी की स्थिति के संदर्भ में, तथापि इसमें स्त्री को देवीतुल्य स्थान भी प्रदान किया गया है। स्त्रीधन और स्त्री-अधिकारों के विषय में मनुस्मृति की दृष्टि अपेक्षाकृत सजग और व्यावहारिक है। अत: कुछ विरोधाभासी पक्षों के होते हुए भी मनुस्मृति को हिन्दू विधि के मूल स्रोतों में सम्मिलित किया जाता है।

विधिक दृष्टि से याज्ञवल्क्यस्मृति का स्थान मनुस्मृति के पश्चात् है। इसमें आचार और व्यवहार से संबंधित नियमों का अधिक क्रमबद्ध और स्पष्ट संहिताकरण मिलता है। नारदस्मृति मुख्यत: व्यवहार पक्ष पर केंद्रित है, इसलिए इसे विधिक दृष्टि से अपेक्षाकृत संकीर्ण माना गया है। विभिन्न कालों में रचित होने के कारण स्मृतियों में परस्पर भिन्नताएँ स्वाभाविक हैं, किंतु नियमों में मतभेद की स्थिति में मनुस्मृति को सर्वोपरि माना गया है।

सारत: सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि स्मृतियाँ भारतीय धर्म, संस्कृति और विधि-परम्परा की एक सुदृढ़ तथा अनिवार्य कड़ी हैं। वेदों में निहित धर्मतत्त्वों को व्यवहारिक जीवन में उतारने का कार्य स्मृतियों ने किया। धर्म, आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त जैसे विषयों के माध्यम से स्मृतियों ने मानव जीवन को नैतिक, सामाजिक और विधिक अनुशासन प्रदान किया।

स्मृतियाँ किसी एक काल की रचना न होकर दीर्घ ऐतिहासिक विकास का परिणाम हैं, जिनमें

समय और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप नियमों में परिवर्तन और उदारता दिखाई देती है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, नारदस्मृति, पराशरस्मृति तथा बृहस्पतिस्मृति जैसी प्रमुख स्मृतियाँ भारतीय समाज की आचार-संहिता और विधिक व्यवस्था की आधारशिला रहीं।

विधिक दृष्टि से स्मृतियों ने न्याय, दण्ड, उत्तराधिकार, विवाह, स्त्रीधन और सामाजिक दायित्वों का क्रमबद्ध विधान प्रस्तुत किया, जिससे हिन्दू विधि का विकास संभव हुआ। आध्यात्मिक और नैतिक स्तर पर स्मृतियों का उद्देश्य मानव के चारित्रिक उत्थान, सदाचार और लोककल्याण की स्थापना रहा है।

अतः यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्मृतियाँ प्राचीन भारतीय समाज की विधिक, नैतिक और सांस्कृतिक चेतना की प्रतिनिधि हैं और आज भी भारतीय जीवन-दृष्टि तथा हिन्दू विधि की मूल प्रेरक शक्ति के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मनु; मनुस्मृति, मेधातिथि एवं कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2013*
2. *याज्ञवल्क्य; याज्ञवल्क्यस्मृति, विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2010*
3. *नारद; नारदस्मृति, भाष्यकार-असहाय, सम्पादक - डॉ. जॉली, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1985*
4. *पराशर; पराशरस्मृति, माधवाचार्य कृत टीका सहित, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2008*
5. *बृहस्पति; बृहस्पतिस्मृति (उद्धरण-संकलन), भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे, 1976*
6. *कात्यायन; कात्यायनस्मृति, चौखम्भा ओरिएण्टल रिसर्च सीरीज, वाराणसी, 2006*
7. *व्यास; व्यासस्मृति, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे, 1929*
8. *गौतम; गौतम धर्मसूत्र, सम्पादक - जॉर्ज बुहलर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965*
9. *बौधायन; बौधायन धर्मसूत्र, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे, 1915*
10. *आपस्तम्ब; आपस्तम्ब धर्मसूत्र, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 2004*
11. *वसिष्ठ; वसिष्ठ धर्मसूत्र, जॉर्ज बुहलर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1964*
12. *देवीभागवत पुराण; गीताप्रेस, गोरखपुर, 2011*
13. *गरुड़ पुराण; गीताप्रेस, गोरखपुर, 2010*
14. *अग्नि पुराण; गीताप्रेस, गोरखपुर, 2009*
15. *कुमारिल भट्ट; तन्त्रवार्तिक, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1998*
16. *मित्र मिश्र; वीरमित्रोदय, चौखम्भा ओरिएण्टल रिसर्च, वाराणसी, 1916*
17. *कमलाकर भट्ट; निर्णयसिन्धु, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2002*

18. नीलकण्ठ भट्ट; मयूख, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1995

19. मैक्समूलर; प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास, ट्रूबनर एण्ड कम्पनी, लंदन, 1860

20. मैक्स वेबर; भारत के धर्म (Religion of India), मुंशी राम मनोहरलाल, दिल्ली, 1960

21. डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी; हिन्दू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

22. डॉ. पी. वी. काणे; धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग 1-5), भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे, 1930-1962

23. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक; ओरायन, केसरी प्रकाशन, पुणे, 1893

24. वाचस्पति गैरोला; हिन्दू लॉ एंड स्मृतियाँ, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, 1958

25. डॉ. पारस दीवान; हिन्दू विधि, इलाहाबाद लॉ एजेंसी, प्रयागराज, 2016

26. हेनरी मेन; प्राचीन विधि (Ancient Law), जॉन मरे, लंदन, 1861

27. श्री गंगानाथ झा; मनुस्मृति (अनुवाद एवं टीका), एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1920

28. काशी प्रसाद जायसवाल; हिन्दू पॉलिटी, पटना यूनिवर्सिटी प्रेस, पटना, 1924

29. जॉर्ज बुहलर; The Laws of Manu, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1886

30. यास्क; निरुक्त, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2001